‘‘स्वातंत्रयोत्तर हिंदी नाटकों में वर्णित भारतीय राजनीतिक चेतना का मूल्यांकन’’

सविता देवी
शोध छात्रा
हिंदी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
ई-मेल-
savitasingh1207.ss@gmail.com

किसी देश की राष्ट्रीय चेतना का सांस्कृतिक स्तर उस देश की राजनीतिक संरचना द्वारा आंका जाता है। राजनीति में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव संस्कृति पर भी पड़ता है क्योंकि संस्कृति एवं नीति का घनिष्ठ सम्बन्ध है ‘नीति संस्कृति की पथद्रष्टा है’1 , और साहित्य उसका अनुगामी। इसीलिए इस कथन के आलोक में ‘हेनरी हडसन’ महोदय का वह कथन द्रष्टव्य है कि-

‘‘विभिन्न साधनों में साहित्य ही एक ऐसा साधन है जिसमें काल विशेष की स्फूर्ति अपनी अभिव्यक्ति पाकर उन्मुक्त होती है, यही स्फूर्ति परिप्लावित होकर राजनीतिक आंदोलनों, धार्मिक विचार, दर्शन और कला के रूप में प्रकट होती है।’2

नाटकों के माध्यम से जीवन की वास्तविकता का जीवंत चित्रण दर्शक अपनी आँखों के सामने देख सकते हैं, नाटकों के पात्र किसी देश काल के प्रतिनिधि पात्र होते हैं जो तीनों सांसारिक सार्वभौम वास्तविकताओं, जीवन-विवेक, जीवन-सम्भोग और सौंदर्य बोध को प्रतिबिंबित करते हैं। स्वातंत्रयोत्तर हिंदी नाटककारों द्वारा अपनी रचनाओं के माध्यम से जनता के मन में राजनैतिक चेतना को उभारने की कोशिश की, इस युग के जनमानस में व्याप्त पीड़ा, हताशा, कुण्ठा, घुटन, शोषण, संघर्ष, पराजय एवं विद्रोह की भावनाओं को नाट्य-पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करवाया। किसी नाटककार ने इतिहास तो किसी ने पुराण का सहारा लेकर स्वातंत्रयोपरांत राजनीतिक चेतना को जगाने का पुरजोर प्रयास किया है।

ऐतिहासिक संदर्भों को लेकर लिखे गये प्रमुख नाटकों में अज्ञेय की ‘उत्तरप्रियदर्शी’, जगदीश चन्द्र माथुर की ‘पहला राजा’, दुष्यंत कुमार की ‘एक कंठ विषपाई’, सुशील कुमार सिंह की ‘नागपाश’, शंकर शेष की ‘एक और द्रोणाचार्य’, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की ‘अब गरीबी हटाओ’ एवं लक्ष्मी नारायण लाल की ‘कलंकी’ को हम आधार बना सकते हैं जिसमें भारतीय राजनीति का एक चेहरा हम देख सकते हैं। उत्तरप्रियदर्शी में अज्ञेय जी ने अशोक का संदर्भ लिया है जिसमें अशोक शत्रुओं को दण्ड देने के लिए नरक का निर्माण करता है लेकिन एक दिन वह स्वयं इस नरक में यातना सहने को विवश हो जाता है, यह ठीक उसी प्रकार है जैसे आज के राजनेता अपने आपको स्वच्छ छवि का साबित करने हेतु अत्यन्त कठोर व्यवस्था का निर्माण करते हैं लेकिन एक समय वह स्वयं उस व्यवस्था में जकड़ जाते हैं तो वही व्यवस्था उसे नहीं छोड़ती-

यह मेरा संसार नरक है
सत्ता की मुट्ठी में जकड़ी
यहाँ कल्पना
तोड़ रही है साँस।

(उत्तरप्रियदर्शी, पृ0 48)

इसी प्रकार जगदीश चन्द्र माथुर ने अपने नाटक 'पहला राजा' में पौराणिक संदर्भ को आधार बना आधुनिक युगबोध का एक मार्मिक चित्र उपस्थित किया है, इसमें राजा पृथु की जीवन की घटनाओं के माध्यम से स्वातंत्रयोत्तर भारत की विषमतापूर्ण राजनीति और उसमें उलझे हुए पण्डित जवाहरलाल नेहरू की असफलताओं और उनकी योजनाओं की असफलताओं के प्रणेता मंत्रियों की कूटनीति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है कि किसी भी राजनीति व्यवस्था के उदय में शासन तंत्र को कैसी मुश्किलें आती हैं। दुष्यंत कुमार के नाटक 'एक कंठ विषपायी' में दुष्यंत कुमार ने युद्ध की भयानकता तथा मानवमूल्यों के संकट का चित्रण किया है कि कैसे वह पुरातन का मोह छोड़ नहीं पा रहा है और नये का वरण कर नहीं पा रहा है। जैसा कि भगवान शंकर का चित्रण किया गया है। आज हमारी भारतीय राजनीति भी उसी उधेड़बुन में फंसी पड़ी है कि आखिकर कैसे अंग्रेजियत को हम पूरी तरह त्यागें लेकिन उसे त्यागने में जो सबसे बड़ा संकट सामने आ रहा वह उस अंग्रेजी व्यवस्था के रूप में जिसे छोड़कर नयी व्यवस्था का सृजन और उसका अनुपालन कठिन हो जायेगा। शोषित जनता के समर्थन में सक्सेना जी का नाटक 'अब गरीबी हटाओ' में देश की गरीबी की समस्या को रेखांकित किया गया है जो प्राचीनकाल से आज तक कमोवेश उसी रूप में बनी है। स्वतंत्रता के कई वर्ष बीत जाने के बाद भी जब देश की सत्ता देश के लोगों के हाथों में आ गयी तब भी कुछ नहीं बदल रहा तो नाटककार इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अब गरीब को ही इसके विरूद्ध लड़ना चाहिए एवं गरीबी के विरूद्ध आम जनमानस की चेतना को उभारने का काम भी किया है। यहाँ जन कल्याण का प्रयत्न केवल, इमारतों, कमीशनों और मौखिक लिखा पढ़ी तक ही सीमित रह जाता है। अकारण मुकदमा चलाना जेलों में अकारण ठूँस देना, लगान न देने वालों पर जुल्म ढाना आदि के माध्यम से यह बताया गया कि शोषण का यह क्रम युगों से चल रहा है। इसी प्रकार सुशील कुमार सिंह ने भी अपने नाटक 'नागपाश' में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार सामाजिक-राजनीतिक कुचक्रों तथा झूठी व्यवस्था में फंसे जनवर्ग की दयनीय स्थिति को दिखाया है। क्योंकि यह नाटक देश में लगे आपातकाल के समय में लिखा गया है तो हमें इसमें आपातकाल के समय की भयानक स्थितियों का भी चित्रण देखने को मिलता है, साथ ही साथ कैसे स्वार्थी राजनीतिज्ञ आज अनैतिक मार्ग से सत्ता हड़प उसका दुरूपयोग कर रहे इसके लिए भी नाटककार ने मजबूती से आवाज उठायी है। सुशील जी ने अपने एक अन्य नाटक 'आज नहीं तो कल' में देश में जनता पार्टी के शासन की आलोचना प्रतीक शैली में अत्यन्त ही कुशलता से की है। उनका मानना है कि यदि कांग्रेस के प्रारम्भिक लम्बे शासनकाल के बाद जब जनता को कोई लाभ नहीं मिला तो जनता पार्टी के शासन में आने के बाद तो जनकल्याण होना चाहिए था लेकिन जनता पार्टी का कार्य भी केवल जांच आयोग की नियुक्ति और हवाई दौरों तक सीमित था3 तथा देश में अन्याय और भ्रष्टाचार और बढ़ गया इस नाटक में नाटककार सम्पूर्ण भारत की भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करने में सफल हुए हैं।

अपने नाटक शुतुरमुर्ग के अंतर्गत ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने स्वांत्रयोत्तर भारत की पूरी राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति का चित्र अत्यन्त मौलिक ढंग से चित्रित किया है। यह नाटक मनुष्य की उस प्रवृत्ति का साक्षात्कार कराता है जिसमें वह सत्य व यथार्थ का सामना न करके उसमें पलायन कर जाता है और इसका लाभ शासन तंत्र में बैठे लोग लेते हैं जो सुनहरे भविष्य की आशा देकर जनता को धोखा देते हैं और अपना सिंहासन सुरक्षित करते हैं। इस नाटक के द्वारा नाटककार ने सामयिक राजनीति पर कटु व्यंग्य किया है कि कैसे जनता का उसकी ही समस्याओं को लेकर जनता से ही सत्ता का विरोध कराकर विपक्ष सत्ता पक्ष में आ जाता है और फिर वही करता है जिसका उसने विरोध कराया था। आज सम्पूर्ण भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में जो नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है उसके अनेकों कारण हैं जिसमें सबसे प्रमुख कारण है कि आज हमारे पास मूल्यों के प्रति समर्पण भाव रखने वाले नेताओं का नितांत अभाव है। स्वतंत्रता पूर्व हमारे देश में पद, ओहदे, सुख-सुविधा त्यागकर नेता स्वातंत्रय संघर्ष को उद्वत थे लेकिन आज के परिवेश में देशप्रेम, देश की एकता, अखण्डता, समाज कल्याण आदि का ध्यान न रखकर पदलोलुपता और स्वार्थ पर सम्पूर्ण भारतीय राजनीति टिकी हुई है। नैतिकता का पूर्ण अभाव है जिससे कि आमजन में भी वो मूल्य निरंतर क्षरित होते जा रहे हैं। क्योंकि

चरित्रहीन नेताओं के सम्पर्क में आने वाली आमजनता भी चारित्रहीन और स्वार्थी बनने की ताकत रखती है।

वर्तमान भारतीय राजनीति धन के आदर्शवाद और आत्मसेवा पर केन्द्रित है अतः इस संदर्भ में पं0 जवाहर लाल नेहरू का कथन दृष्टव्य है कि -

''राजनीति और अर्थशास्त्र की दुनिया में सत्ता की खोज प्रमुख हो गयी है और जब सत्ता प्राप्त होती है तो बहुत सारे मूल्य नष्ट हो गये होते हैं।''4

राजनीति के इस कटु सत्य को स्वातंत्रयोत्तर हिंदी नाटककारों ने भलीभांति उद्धृत कर दृश्यांकित किया। साम्राज्य लिप्सा, राजनैतिक कुचक्र, झूठे वादे, कोरे आश्वासनो, सत्ता के प्रति मोह आदि के कारण जनता को हमेशा उत्पीड़ित करने वाले नेताओं का चित्रण सुशील कुमार सिंह ने 'सिंहासन खाली है' में किया है और नाटककार इसे एक अंतहीन सिलसिला मानता है और कहता है कि जनता और राजा के बीच जहर उस समय से ही व्याप्त हुआ हो गया, जब पहली बार सत्ता की स्थापना हुई होगी। रक्षक के स्थान पर राजा भक्षक बन रहा और एक सुपात्र शासक की खोज जारी है।5

वर्तमान समय की राजनीति यथार्थ को झुठलाने वाली है। सत्य का गला घोटने वाली यह राजनीति बहुत जल्दी जनहन्ता राजनीति का रूप धारण करती है। नेतागण अपनी कूटनीति, दूरदर्शिता, दूसरों की कमजोरी का लाभ उठाने की क्षमता, अवसरवादिता के कारण सत्ता में लगातार स्वयं को बनाये रखने में सफल हो जा रहे हैं और आज की प्रजा अपने आपको अंतिम समय में ठगा महसूस करती रह जा रही है। अपने नाटक 'बकरी' में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी ने इस पीड़ा का चित्रण कर्मवीर, सत्यवीर और दुर्जन सिंह के रूप में बखूबी से किया है जो गांव की गरीब विपती की बकरी को हड़प लेते हैं और आने वालों को बेवकूफ बनाकर उन्हें यह विश्वास दिलाते हैं कि 'उस बकरी की माँ की मां की माँ गांधी जी की बकरी थी। अतः वह गांधी जी की बकरी है। ग्रामीणों की अज्ञानता का लाभ उठाकर वे चुनाव तक जीत जाते हैं और जनता को विश्वास दिलाते हैं कि वे मात्र उनके ही लिए है और हमेशा न्याय करते हैं और जनता उनमें यह विश्वास बनाये रखे कि ''अच्छे दिन आने वाले हैं।'' यह नाटक तत्कालीन 'आपातकाल' की राजनीतिक पृष्ठभूमि में लिखा गया था। अतः इसमें हम यह देखते हैं कि प्रजा की रक्षा के नाम पर आपातकाल में भारतीय जनता को भी उसी प्रकार से पीड़ित किया गया जिस प्रकार नाटक में अवधूत और तांत्रिक के द्वारा जनतंत्र के समर्थक हेरूप को पीड़ित किया। तद्युगीन निरंकुश सत्ता ने जनसाधारण को सहज जीवन बोध से दूर कर उसे प्रश्नहीन बना दिया जिससे आत्मानुभव जैसा विषय जनता के वश की बात नहीं रह जाती और विवेक उनसे दूर हो जाता है। आज की राजनीति में भी हम अपने आस पास अगर ऐसे उदाहरण ढूंढे तो वे सहज ही उपलब्ध है। आज पैसे की बदौलत ही माफिया, चोर, डाकू, चुनावों में अपनी दावेदारी पेश करते हैं और वोट खरीदकर और डरा धमकाकर नेता बन जाते हैं। इस नाटक में डाकुओं का आगे नेताओं में बदल जाना अपने आप में एक बहुत बड़ा व्यंग्य है।

वर्तमान राजनीति के सत्ताधीश सदैव जनता को प्रश्नहीन और प्रतिक्रियाहीन तथा अनुगामी रूप में देखना चाहते हैं। जो लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक 'कलंकी' के पात्र अकुलक्षेम से मेल खाता है जो अपनी राजनीतिक शक्ति के बल पर अपनी पत्नी, बच्चों और सारी प्रजा को दबाना चाहता है। अकुलक्षेम जैसे शासक अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु पहले प्रश्नहीन जनता को दिशाहीन कर देते हैं और फिर वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर उन्हें कमजोर कर मृतप्राय बना देते हैं।6 यह नाटक भले ही 1969 की राजनीतिक पृष्ठभूमि में लिखा गया लेकिन वर्तमान राजनीति में घट रहे प्रसंगों को यदि हम देखें तो यह नाटक अपनी काल निरपेक्षता को सिद्ध करता है।

नरेन्द्र कोहली ने अपने नाटक 'शम्बूक की हत्या' में सत्ता की उस अंध राजनीति पर कड़ा प्रहार किया है जो जनता को कभी प्रश्नोन्मुख नहीं होने देगी। अपनी आंखों के सामने हत्या हो जाने पर भी ऊपर से आदेश आए बिना हत्यारों को न पकड़ने वाले

पुलिस के सिपाही का चित्रण कर नाटककार कानून-व्यवस्था व दायित्वहीनता पर कठोर प्रहार करता है।

स्वतंत्र भारत में अनेकानेक नेता स्वयं को गांधी जी का अनुगामी घोषित करते हैं उनके ऊपर भी उनके मुखौटों को उतारने के लिए स्वातंत्रयोत्तर नाटकों की रचना की गयी। आजादी के बाद राजनीति के क्षेत्र में गांधीवाद के नाम पर जो स्वार्थपूर्ण खेल चले, चंद स्वार्थों की पूर्ति के लिए जो चालें चली गयीं उसकी असलियत को सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने अपने नाटक 'बकरी' में अत्यन्त ही प्रभावशाली ढंग से उद्धृत किया है। नाटक में गांधी जी की बकरी के नाम पर गांधी जी के प्रति जनता के मन में बची-खुची आस्था का लाभ उठाने के लिए बकरी संस्थान और बकरी सेवासंघ तक की स्थापना करते हैं और 'बकरी थन' को चुनाव चिन्ह बना लेते हैं।7

'महात्मा गांधी का लक्ष्य था कि मैं एक ऐसे भारत को बनाऊंगा जिसमें गरीब से भी गरीब यह अनुभव करेंगें कि यह उनका देश है, इसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्व है, जिसमें कोई ऊँच-नीच नहीं होगा जिसमें सभी समुदाय पूरी तरह मिल-जुलकर रहेंगे, हम न तो किसी का शोषण करेंगे न अपना होने देंगे।''

श्री ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने 'शुतुरमुर्ग' में इस यथार्थ की ओर संकेत किया है कि आज का राजनीतिज्ञ/शासक सत्यमेव जयते कहकर असत्य ही करता रहता है, ये झूठ बोलकर जनता को धोखा देते हैं। शुतुरनगरी में भूख से पीड़ित होकर कुछ लोगों की मृत्यु हुई पर मंत्री उसे मानता ही नहीं है और जनता से सावधान रहने की प्रार्थना करके कहता है कि - ''कुछ व्यक्तियों के भूख से मरने का समाचार निराधार है।''8 आज के दौर में हम अपने आस-पास और समाचार पत्रों के माध्यम से इस तरह के समाचारों और घटनाओं का साक्षात्कार आसानी से कर सकते हैं। जब कहीं कोई इस तरह की दुर्घटना होती है तो वह त्वरित रूप से एक पिकनिक स्पाट (नेताओं के लिए) बन जाता है और सत्तापक्ष और विपक्ष के बेतुके बयान आसानी से पढ़े जा सकते हैं। यह समसामयिक परिस्थिति में अत्यन्त व्यावहारिक है। क्योंकि इस पर हम कुछ समय पूर्व ही एक फिल्म ''पीपली लाइव'' को देख सकते हैं।

'एक और द्रोणाचार्य' नाटक में श्री शंकर शेष ने यही दिखाया है कि व्यवस्था की कठपुतली बनकर द्रोणाचार्य एक निर्दोष बालक का अंगूठा मांग लेते हैं जिससे हमें नाटककार की राय बिल्कुल सही लगती है कि आज की व्यवस्था ने हमें झूठ बोलना सिखाया है।

आज हमारे देश की राजनीति की सबसे बड़ी समस्या है दल बदल। चुनाव के निकट पाते ही ये नेता एक पार्टी छोड़ दूसरी पार्टी में चले जाते हैं और स्वयं के जीत-हार की चिंता को सर्वोपरि रखकर विचारधारा को अपने जूते के नीचे कुचलते रहने में उन्हें कोई हर्ज नहीं रहता। श्री वृजमोहन शाह ने अपने नाटक 'त्रिशंकु' में ऐसे अत्याचारी/भ्रष्टाचारी नेताओं की पोल खोली है। जो देश को खुशहाल बनाने और भ्रष्टाचार से मुक्त कराने के बहाने लेकर पुराने दल छोड़ते हैं और नये दलों में जाकर बड़े कारखानों और उद्योगपतियों से चंदा प्राप्त कर भ्रष्टाचार का पृष्ठ पोषण करते हैं। आज के राजनीतिक दौर में हम इस तरह के उदाहरणों को महसूस कर सकते हैं जो बड़ी संख्या में हमारे लोकतंत्र में चौतरफा देखने को मिल रही है। इससे न तो भ्रष्टाचार पर लगाम लग रहा न ही कोई विकास हो रहा अपितु वही भ्रष्टाचारी नेता नई पार्टियों और चेहरों के साथ हमारे बीच देश को घुन की तरह निरन्तर चाल रहे हैं। नाटक 'अब्दुल्ला-दीवाना' में लक्ष्मी नारायण जी ने एक पात्र जो चपरासी हैं के मुँह से जो कथन कहलवाये हैं वो सर्वथा आज की हकीकत को उजागर करते हैं कि -

''जी हां पहले ये तिरंगे कपड़े पहनते थे, फिर लाल-सफेद, फिर काला, फिर लाल, फिर पीला, फिर गेरूआ ...., कहने लगा एक ही रंग का कपड़ा मैं रोज नहीं पहनूँगा फिर वह हर रोज रंग बदलने लगा।''

'टूटते परिवेश' में विष्णु प्रभाकर ने भी ऐसे ही नेताओं का चित्र अंकित किया है कि कैसे मंत्री पद की लालसा में कोई नेता अपना दल छोड़कर दूसरे दल को समर्थन करने लगता है।

हमारे देश में चुनाव जीतने के लिए 18 वर्ष से ऊपर के हर व्यक्ति चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित, गरीब हो या अमीर सबका वोट बटोरना पड़ता है इसलिए किसी भी मूल्य पर राजनीतिज्ञ इन्हें अपनी तरफ मोड़ना चाहते हैं। ये वोट पाने के लिए कभी झूठे वादे करते हैं, तो कभी रूपये देते हैं, तो कभी पिस्तौल दिखाकर वोट देने को मजबूर करते हैं। इस सम्पूर्ण घटनाओं को हम लक्ष्मी नारायण के नाटक 'राम की लडाई' में बखूबी देख सकते हैं। इस नाटक में पिता को धमकी देने आये नेताओं के बारे में विमला का कहना है कि - ''इलेक्सन की पिछली रात से तीनों पार्टियों के लोग झोले में रूपये, पिस्तौल, हथगोले भरे पिता जी के पास आते रहे, हर तरह से दबाव डालने के लिए अपने पक्ष में वोट देने के लिए कहा।''9

आज के दौर में सत्ता लोभी राजनीतिज्ञों में लाज-शर्म जैसी चीज ही नहीं है। नरेन्द्र कोहली ने इस संदर्भ में लिखा है कि - ''राजा दशरथ ने पुत्र के वियोग में प्राण त्याग दिये लेकिन आज के लोग केवल कुर्सी के वियोग में प्राण त्याग देते हैं।''10

आज की सरकार भाषण के बल पर टिकी हुई है। राजनेताओं के लिए यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है कि हमेशा उसे जनता को उत्तेजित कराने के लिए निरंतर यह अनुभव कराते रहना है कि सरकार उसकी हितैषी है और उसकी भलाई के लिए ही हमेशा कार्य कर रही है। इस संदर्भ में लक्ष्मीकांत वर्मा के नाटक 'रोशनी एक नदी है' में नेताओं के भाषणों पर व्यंग्य करते हुए कुमकुम का कथन अत्यन्त ही प्रासंगिक प्रतीत होता है कि -

''वह भाषण, इतने बड़े-बड़े शब्द, प्रजातंत्र ... जम्हूरियत ... इंसानियत ... आत्मा की आवाज ... समाजवाद ... गरीबी हटाओ ... हह्‌ ... जैसे करीबी कोई फाइल है ... दस्तखत करो ... हटाओ।''11

भारतीय राजनीति पर कृष्णनाथ जी ने, अगस्त, 1968 में नई धारा के अंक में अपने लेख 'बुद्धिजीवी और परिवर्तन की राजनीति' के अंतर्गत लिखा था जो आज भी प्रासंगिक है और भारतीय राजनीति को आइना दिखाता है -

''अगर सरकारी दल में है तो एम0एल0ए0, एम0पी0 बनकर, मंत्री-उपमंत्री बनने के चक्कर में है और अगर विरोधी दल मे है तो जैसे भी हो गद्दी तक पहुंचने के लिए उतावले हैं और अगर वह भी नहीं हो तो अपने क्षेत्र में अपनी असेम्बली, पार्लियामेंट में मस्त हैं। क्षेत्र बने, सुरक्षित रहे और असेम्बली पार्लियामेंट में भाषण हो, छपे, पढ़ा जाय या पढ़ावाया जाय, यही आलम है।''

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि स्वातंत्रयोत्तर हिंदी नाटकों में हमें वर्तमान और तद्युगीन राजनीति का जो अध्याय मिलता है उसमें हमारे नाटककारों ने बड़ी ही बेबाकी से इन समस्याओं को हमारे समक्ष रखा है, परन्तु आज के दौर में साहित्यकार के लिये सबसे बड़ी समस्या एक साहित्यकार के रूप में अपने व्यक्तित्व की रक्षा की है। एक कलाकार या साहित्यकार को कम से कम इतनी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए कि वह राजनीतिज्ञों की गलत रणनीति को गलत कह सके, उससे असहमत हो सके, क्योंकि स्वतंत्रता ही उसकी रचना को शक्ति देती है, जिसे स्वातंत्रयोत्तर नाटकों में हम बखूबी देख सकते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. आधुनिक भारतीय काव्य में नैतिक चेतना-राज बघिया, पृ0 5, सं0 1969
2. एन इन्ट्रोडक्सन टू द स्टडी आफ लिटरेचर- एच0 हडसन, पृ0 37 संस्करण-1963
3. साठोत्तरी हिंदी नाटक में त्रासदतत्व, मंजुलादास, पृ0 109
4. जवाहर लाल नेहरू, डिस्कवरी आफ इण्डिया, पृ0 595
5. सुशील कुमार सिंह, सिंहासन खाली है, पृ0 7, 40, लिपि प्रकाशन, 1974

6. रमेश गौतम - समकालीनता के अतीतोमुखी नाटक पृ0 106
7. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बकरी, दूसरा अंक, पहला दृश्य: लिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1981
8. ज्ञानदेव अग्निहोत्री - शुतुरमुर्ग, पृ0 46
9. लक्ष्मी नारायण लाल - राम की लड़ाई, पृ0 28
10. नरेन्द्र कोहली - शम्बूक की हत्या पृ0 25, विवेक प्रकाशन दिल्ली, 1975
11. लक्ष्मीकांत वर्मा - रोशनी एक नदी है, पृ0 41-42, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1974

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. बदलते मूल्य और आधुनिक हिंदी नाटक - डॉ0 ओम प्रकाश सारस्वत, मंथन पब्लिकेशन रोहतक, 1983
2. स्वातंत्रयोत्तर हिंदी नाटक - डा0 रामजन्म शर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985
3. स्वातंत्रयोत्तर हिंदी नाटक, समस्या और समाधान - डा0 दिनेश चन्द्र वर्मा, अनुभव प्रकाशन श्रीनगर-कानपुर, 1987
4. आधुनिक हिंदी नाटकों में प्रयोग धर्मिता - डा0 सत्यवती त्रिपाठी, राधाकृष्णन प्रकाशन, 1991
5. अब गरीबी हटाओ - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, लिपि प्रकाशन, दरियागंज, 1976
6. अब्दुल्ला दीवाना - लक्ष्मी नारायण लाल - राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1976
7. उत्तर प्रियदर्शी - अज्ञेय, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1967
8. एक और द्रोणाचार्य - शंकर शेष, पराग प्रकाशन ,दिल्ली, 1983
9. एक कंठ विषपायी - दुष्यंत कुमार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976
10. कलंकी - लक्ष्मी नारायण लाल, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, दरियागंज, दिल्ली, 1969
11. कालजयी - शंकर शेष, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1987
12. टूटते परिवेश - विष्णु प्रभाकर, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, 1974
13. त्रिशंकु - वृजमोहन शाह, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली-1982
14. नागपाश - सुशील कुमार सिंह, साहित्य सहकार प्रकाशन, 1977
15. पहला राजा - जगदीश चन्द्र माथुर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980